72

जनवरी-जून, 2017

मध्य भारती

मानविकी एवं समाजविज्ञान की द्विभाषी शोध-पत्रिका

Scanned with CamScanner

अनुक्रमणिका

बचपन, शिक्षा और वैश्विक समाज 5
कैलाश सत्यार्थी

निर्मल वर्मा का भारतबोध : प्रामाणिक संस्कृतात्मा का प्रत्यभिज्ञान 17
अम्बिकादत्त शर्मा

भारतीय दर्शनों के प्रति राहुल जी की दृष्टि : कुछ विशेषताएँ 27
प्रदीप गोखले

संतुलन का सौंदर्य और विडम्बना 33
पंकज चतुर्वेदी

उत्तर-आधुनिकतावाद और विज्ञान की आलोचना 48
आलोक टण्डन

भक्तिः मोक्षशताधिका 54
रमाकान्त पाण्डेय

महाकवि माघ का राज-धर्म 77
सञ्जय कुमार

प्रवासन (माइग्रेशन) के विकल्प की जरूरत 87
विवेक कुमार जायसवाल

समकालीन पत्रिकाओं में स्त्री-अस्मिता 93
अखिल कुमार गुप्ता

भारतीय संस्कृति और कला में गज 105
मीनू अग्रवाल

रास और कथक का अन्तरसम्बन्ध 111
शाम्भवी शुक्ला मिश्रा

कांट के नीतिशास्त्र के आधारभूत मान्यताओं में शुभ संकल्प का महत्त्व 119
मल्लिका कुमारी

अपराधी व्यवहार का ज्योतिषविश्लेषणीय दृष्टिकोण 126
विवेक मेहता एवं दीपक गुप्ता

Scanned with CamScanner

महाकवि माघ का राज-धर्म

सञ्जय कुमार

प्रत्येक राष्ट्र को उन्नत तथा सुव्यवस्थित करने के लिए राज-धर्म की महती आवश्यकता होती है। सदा से ही राष्ट्र के हितैषी मनीषियों द्वारा राज-धर्म के उपदेश दिये जाते रहे हैं। इसी रूप में महाकवि माघ की भी गणना की जाती है। उनके द्वारा विरचित शिशुपालवध महाकाव्य महाभारत के सभापर्व एवं श्रीमद्भागवत पुराण पर आधरित होने के कारण राजधर्म का भलीभाँति विश्लेषण करता है। राज व्यवस्था का उचित नियम ही राज-धर्म कहलाता है। संस्कृत वाङ्मय में राज-धर्म के लिए दण्डनीति, नीतिशास्त्र, क्षत्रविद्या, राजनीति आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। इसकी उपादेयता का ज्ञान इसी से हो जाता है कि इसके विषय में वेद, रामायण, महाभारत, पुराण, स्मृतियों एवं महाकाव्यों आदि में विधिवत प्रतिपादन किया गया है। अर्थशास्त्र, नीतिसार, आदि ग्रन्थ तो पूर्णतः इसी विषय का विवेचन करके उनके अत्यधिक आवश्यकता का उद्घोष करते हैं। स्मृतियों को धर्मशास्त्र कहा जाता है और राज-धर्म को धर्मशास्त्र के अंतर्गत ही माना जाता है, जिससे विदित होता है कि धर्मशास्त्र सामान्य धर्माचरण के अतिरिक्त राजा के आचरण को भी धर्माचरण मानता है। सत्य भी है-'धरणाद् धर्मम् इत्याहु'[1] के अनुसार राज-धर्म के समुचित उपयोग से ही राजा प्रजा एवं राज्य को धारण करता है। राजा प्रजा का भाग्य विधाता होता है। उसके प्रत्येक कार्य का परोक्ष-अपरोक्ष रूप से प्रजा पर प्रभाव पड़ता है। उसके रहने पर प्रजा होती है और नहीं रहने पर प्रजा भी नहीं। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए हितोपदेश में कहा गया है-

नरेशे जीवलोकोऽयं निमीलति, निमीलति।
उदेत्युदीयमाने च रवाविव सरोरुहम्।।[2]

अर्थात् राजा के नेत्र मूँदने पर सम्पूर्ण संसार (प्रजा) भी आँख मूद लेता है और राजा के उदय होने पर ही प्रजा भी उदयवाली (सुखी) होती है। जैसे सूर्य के उदय तथा अस्त होने पर कमल खिलता और बंद होता है। कहने का भाव यह है कि राजा यदि अपने धर्म का निर्वाह सम्यक् प्रकार से करता है तो प्रजा भी अपने कर्त्तव्य-पालन में निष्ठावान होती है। यथा राजा तथा प्रजा की उक्ति भी हमें यही शिक्षा देती है। मनुस्मृति में कहा गया है कि चारों ओर से भयाक्रान्त की रक्षा के लिए ही राजा को ब्रह्मा ने उत्पन्न किया है -

अराजके हि लोकेऽस्मिन सर्वता विद्रुते भयात्।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत प्रभु।।[3]

अर्थात् राजा से रहित यह लोक भय से सभी ओर भागने को परवश होने पर इस सम्पूर्ण जगत् की रक्षा के लिए ईश्वर (ब्रह्मा) ने राजा को उत्पन्न किया, इस प्रकार राजा ब्रह्मा की अनुपम सृष्टि है। राजा के स्वरूप के विषय में महाकवि माघ लिखते हैं -

मध्य भारती-72, जनवरी-जून, 2017, ISSN 0974-0066, *pp. 77-86*

Scanned with CamScanner